अन्वीक्षा, वर्ष 12, अंक 16, 2016 (46-50) ISSN - 0976-674X

हिन्दी संस्मरण साहित्य में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का अवदान

* डॉ. अभिलाषा शुक्ल

शोधसार – गद्य कवियों की कसौटी कही जाती है। हिन्दी में जितने कवि हैं उनमें से अनेक गद्यकार भी है। गद्य लेखन चातुर्यपूर्ण होने पर कवि प्रतिभा में निखार आता है। उत्तर छायावादी कवि अंचल श्रेष्ठ गद्यकार भी है। अपने कवि रूप में 'अंचल' जी ने दो विरोधी ध्रुवों की परिक्रमा कर ली है। एक पर उनकी उद्दाम श्रृंगार की रचनाएँ हैं जो उन्मुक्त ढंग से लिखी गई हैं, तो दूसरी ओर उनका वह प्रगतिशील रूप भी है, जिसमें उन्होंने सामाजिक यथार्थ को अपनाया है। अंचल जी में जीवन के जो ये दो छोर दिखाई देते हैं उन दोनों में एक आकुलता, आक्रोश की प्रधानता है।

उत्तर छायावादी प्रमुख कवि 'अंचल' मस्ती का मन लिये मंजे हुए रचनाकार है तन, मन और आत्मा के संदर्भ की त्रिवेणी अंचल के व्यक्तित्व को सरसता और निश्छलता प्रदान करती है। उच्च अथवा हीन भावना से रहित अंचल जी समाज के प्रत्येक वर्ग के अपने है और सब उनके हैं।[1]

जीवन की सरलता में उन्होंने अपने लेखन में अभिव्यक्ति दी है। वे सहज जीवन के उपासक है। सरलता उनके व्यक्तित्व में निहित है। अंचल जी का कथन है – 'सिर पर लदे बोझ को उतार कर उन्मुक्त वातावरण में साँस लेने में जो आनंद मिलता है, वह निश्चय ही जीवन के लिए स्फूर्ति दायक होता हैं । इसके विपरीत जो मन प्रतिक्षण 'अहं' का (सुपीरियारिटी काम्प्लेक्स) भार धारण किये रहते हैं वे संकुचन और घुटन की मनोव्यथा के शिकार होते हैं । बड़प्पन या श्रेष्ठता की भावना का बलात् अपने ऊपर आरोपण करने से अच्छा है कि उसे अर्जित किया जाय।"[2]

अंचल का संस्मरण - साहित्य :-

अंचल जी के संस्करण का स्वर मानवीय करूणा है । इस अर्थ में कि वे लोक पक्ष को आत्मसात् कर चले हैं । अपना बालपन, परिवेशगत यथार्थ को ध्यान में रखकर साहित्य लिखा गया है। अंचल जी के संस्मरण अनूठे हैं। जीवन्त अनुभव का साक्षात् प्रतिरूपम हैं। उनके संस्मरण पढ़कर ऐसा लगता है जैसे वह पात्र हमारे इर्द–गिर्द ही है। उनके संस्करणों में युगों से पीड़ित, तिरस्कृत नारी की वेदना की आर्त पुकार है। स्त्री–मनोविज्ञान को वे बारीकी से समझते हैं।

अंचल जी का संस्मरण हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं। वे अपने संस्मरणों में अपने विशेष पात्रों को जीवित

* सहायक प्राध्यापक हिन्दी, माता गुजारी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

रखते हुए हैं – "इस घबराहट के साथ न कोई रूमानी कल्पना होती है और न तुलसीदास के 'पियाहीन डरपत मन मोरा' का वास्तविक या काल्पनिक अहसास है। जीवन भर की जानी–पहचानी भयावह कठोरता की तटभूमि रात के पानी–भरे गहराते गुंजलक में थोड़ा–थोड़ा अस्पष्ट और दृष्टिपथ से ओझल होने लगती हैं।"[3]

'अंचल' जी ने अपने गद्य का सृजन जमीनी यथार्थ से किया है। वे गाँव की महिलाओं गाँव के दुःख–दर्द वैराग्य को प्रकट करते हैं वैसे ही जैसे कि मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र आशा–निराशा के मध्य जीवंत संघर्ष कर रहे हैं।

विगत जीवन सुखदायी भी है तथा दुःख का बोध भी कराता है । पिछले जीवन पर जिंदगी की तीसरी मंजिल पर खड़े होकर जब मैं भूमितल से उठे नीचे के अतीत पर अपनी सुकून को तलाशती दृष्टि डालता हूँ तो टेनिसन की 'मरणोपरांत याद आने वाले चुंबनों की तरह प्रेम' (डियर इज रिमेंबर्ड किसेज आटर डैथ) बीते दिनों की स्मरणावालियाँ मन को उद्वेलित कर देती हैं। पिंजरे में बंद किसी पक्षी को (विशेषकर पक्षिणी को) देखते ही मेरी आत्मा न जाने कैसा मूक आर्तनाद करने लगती है।"[4]

अंचल जी स्पस्ट रूप से अपने लेखन पर विचार व्यक्त करते हैं –

व्यक्ति की अनेक कामनाएँ होती है। वह किसी न किसी प्रकार उनकी पूर्ति कर ही जाता है किन्तु स्त्री–पुरूष की शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति एक समस्या बनी हैं। स्त्रियों की अतृप्त कामनाएँ जीवन का मार्ग ही बदल देता है। समाज के मापदंड कामनाओं पर अंकुश लगा देते हैं।

अतृप्त कामना की पूर्ति की इस जीवनाकांक्षा में यदि लज्जा, भय, संकोच, दुविधा, मनभिंदा रहता है तो देहोत्सर्ग, आत्म–विसर्जन का आर्द्र स्तवन भी, पूजा की जैसी विगलित विनती भी, तन से दूर पर मन के पास बसे निर्भीक, मांसल देवत्व की कातर पुकार भी, जो न सुने जाने पर आग की तलवार– सी लहक–लहक उठती है ।"[5]

स्त्री–पुरूष का प्रेम भी अनोखा है स्त्रियाँ तो प्रेम में सर्वस्व लुटा देती है । अंचल जी उनकी पराकाष्टा की ओर संकेत करते हैं अपने सारे रसोत्सव और पुलकालाप के भीतर शत–शत मधुरिम छंदों की राका खुलने की मिलन–मुहुर्तों की प्रगाढ़ता से गुजर कर भी प्रेमी के गृहस्थ छोर पर असहाय, क्षुब्ध ठुकराव की ठंडक से आत्मकातर पड़े, पतिव्रत में डूबे पत्नीत्व की नियति के प्रति घड़ी–घड़ी टूटती रहे–ऐसी प्रेमिका के दुराचार कहे जाने वाले समाज–निंदित प्रेम को भव्यता का कौन–सा विशेषण पहनाया जाये।"[6]

अंचल जी की ये अभिशप्त स्त्रियाँ उनके परिवार की होकर भी उनकी ही मात्र कहानी नहीं कहतीं अपितु ऐसी अनेक स्त्रियाँ जो समाज में रहती हैं । परंतु वे मूक होकर सब ..... सहन करती हैं उनके लिए भी ये पंक्तियाँ संकेत करती हैं । "आज भी दिखाई देने वाले मूक चीत्कारों और आजीवन खामोश .रही आहों पर जब दृष्टि डालता हूँ – पहाड़ी झील की –सी गहराई लिये उन करुण प्रसंगों की जीती जागती स्मृति

रेखाकृतियों को देखता हूँ, तो तारा मौसी की, अपनी आत्मा की नारी को अपने अंदर ही किसी गर्भगृह में बन्दिनी बनाये, अपने बिना किये गुनाह के एहसान को खोजती ता उम्र अपने व्रत को न खोल पाने वाली अभिशप्त, उपवासी नियति मेरे भीतर चक्कर काटने लगती है।"[7]

स्त्रियाँ प्रेम की प्रचारक हैं। स्त्रियों का हृदय विशाल है वे अपनी ही सहभागिनों से अलग व्यवहार करती हैं – "अपने सांघातिक मोह के वशीभूत पुरूष ही आँसू नहीं सूखने देते, अपनी स्वार्थी आसक्ति में बाँध ा–बाँध कर उसे अतृप्ति का आदी बना देते हैं, प्राप्य और अप्राप्य के बीच उसे झुलाया करते हैं, उसकी कल्याणमयी प्रदीप्त आभा को उभरने ही नहीं देते उसके अपने से बाहर का सारा जगत् उसके लिए अर्थहीन क्या– लगभग विलुप्त कर देते हैं। इस तरह की बातें वे करती हैं जो अपनी सहचारिणी, सहभोगिनी, सहवंचिता को समझने का दंभ लिये, उसकी अभिशप्त नियति की एक रेखा तक नहीं पढ़ पातीं।"[8]

अंचल ऐसी स्त्रियों का चित्र उपस्थित करते हैं जो अभिशप्त हैं । समाज की सीमा के भीतर कैद है। ये रेखाएँ हम भी नहीं तोड़ सकते तो वह अनाथ स्त्री क्यों तोड़े, कैसे तोड़े के नियम पर अंचल ने कडुवा सच प्रकट किया है – "स्त्री की एकनिष्ठता से जीवित पुरूष को तो संतोष और पुरूषत्व के अहं की विशिष्ट पूर्ति मिलती ही है, मरने के बाद भी यह एकनिष्ठता कायम रहे – शायद इसीलिए वैधव्य की शुचिता का आविष्कार हुआ होगा। नर के मरणोपरान्त भी उसके प्रति नारी की आसक्ति, प्यार और समर्पण की गहरायी इसी आवेगहीन, कायनिस्पृह एकाग्र, तल्लीन आराधन से आँकी जाती है।"[9]

'अनब्याही सती' संस्मरण द्वारा ऐसी स्त्री का चित्रांकन है जिसके जीवन में वेदना ही वेदना है – "आजीवन असंख्य स्वाभाविक – अस्वाभाविक धड़कनों से धड़कते मेरे हृदय के निभृततम कोने में पिछले पचास वर्षों से संचित उस अनब्याही सती के प्रेम के जिस प्राणलेवा स्मृति अस्थि–शेष को मेरे ही भस्म–कलश के साथ विसर्जित होना था उसे न जाने किस पिछलती प्रेरणा से खुलासा किये दे रहा हूँ। यौवन के मधुसूदन की वीथिका में सौरभ के लीला–उत्सव वाले तरुण अतीत से लेकर आज के आकस्मिक लगते आर्त, अकुलाये, रुके अपरान्ह तक वह कुहरायी, व्यथा–शेष, परम शांत जीती–जागती मूर्ति मेरे भीतर इस तरह गड़ी है कि मिटाये नहीं मिटती।"[10]

स्त्रियाँ शरीर से मजबूर हो उठती है। कामनाएँ हिलोरें मारती है वह पूर्ति तो नहीं कर पाती मात्र बेबस और छटपटाती रह जाती हैं "वह अकम्पित अशरीर से पिघलकर कभी–कभी लालसा का शरीरी कम्प भी बन जाती हैं । विचलन का लुभावना से लुभावना क्षण उसके बिना बोले सिहरन से बिना उसे शिशिरायें ऊपर–ऊपर बेबाक निकल जाता हो, ऐसा भी नहीं होता उसके दुःख की चट्टान में भी रंगीन दरारें पड़ती हैं– वर्षा के पहले बादल की नमी आती है। उसक मरूशुष्क कण्ठ भी कभी–कभी पुकारों से छलछला उठता है। किसी पाप–तारण लोभ में पुण्य के उद्वार की मृगतृष्णा में बैठी वह प्यासे जलाशय की पहचान पा जाती है।"[11]

'विधवा' शब्द ही स्त्रियों के लिए गाली हो गई है । पुरुष तो विधुर होकर जीवन काट रहा है । वह विवाह भी कर लेता है उसके लिए कोई बंधन नहीं है परंतु स्त्रियाँ का वैधव्य काल संघर्ष का जीवन है –" विधवा हो जाने पर सिन्दूर की जल फिर नहीं जुड़ती। नारी–जीवन की सार्थकता और कृतार्थता का जलता हुआ अंगारा सदा के लिए बुझकर राख बन जाता है –ऑसुओं से तरबतर भीगी राख जो दिनों के बीतने के साथ पत्थर और भारी होती जाती है। पति तूफान की तरह सदा के लिए अन्तरिक्ष में विलीन हो जाता है पर प्राण जिसमें साँस ले–लेकर जीता है ऐसी 'ऑक्सीजन' की तरह विधवा उस सारे विनाशक तहस–नहस को झेलती टूटते दम तक अटकी रह जाती है।"[12]

अंचल जी की आत्मा से उठे स्वर ही उनके संस्करणों में ध्वनित है "अपनी अभिव्यक्ति की दीनता और जीवन की हीनता का कुछ ऐसा तीव्र, दमनक, त्रासद बोध मेरा पीछा किये रहा कि मैं अपने जिये के उद्देश्य और विधेय–दोनों का मौन साक्षी ही बना रह गया हानि–लाभ की बात पूरी करने में, हानि की पीड़ा और लाभ की खुशी के तखमीने में कहनी–अकहनी का भेद भूल गया। एकाकार कर लेने वाले सम्पर्कों और परिचयों में जो भी देखा–समझा उसे जीवन का साधारण भग्नांश मानकर अतीत के पीछे छोड़ा किया। सब का सब न बने किस भीतरी ओट में पड़ा रहा।"[13]

सामाजिक विधान क्या सिर्फ स्त्रियों के लिए ही है। प्रसाद जी ने लिखा है – 'दो प्रेम करने वालों के बीच एक स्वर्गीय ज्योति निवास करती है' अंचल प्रेम को निर्जला रूलाई संस्मरण में इस प्रकार रेखांकित करते हैं । 'प्रेम जैसे कोई पहले से नापी–तौली, तयशुदा, सोच–समझकर शुरू की गयी पूर्वयोजित प्रक्रिया हो, जिसके लिए कालखंड, आयु, सप्तपदी के पहले या बाद की सीमा रेखा बाँधी जाये और सोच–समझकर आने पर उसे बकायदा किया, कराया जाये। विवाह –पूर्व की निकटता मात्र आज के वैवाहिक जीवन में चाहे जितनी रोमांटिक लगे, जितना ये मन–बहलाव करें, मेरे उन तरुण दिनों में कहीं कितना बड़ा अभिशाप सिद्ध हो गयी और आजीवन न चुके–न उतरे ऐसा जहर घोलने लगी थी।"[14]

इन संस्मरणों में सबसे अधिक चित्र उन स्त्रियों के है जिन्हें समाज ने प्रताड़ित किया है।

संदर्भ

1. डॉ. अरूण कुमार मिश्र– 'हिन्दी का गद्य लेखन में उत्तरछायावादी कवियों का अवदान' शोध प्रबंध डी–लिट्, पृष्ठ 623
2. श्रीमती विद्या शर्मा– 'उत्तरछायावादी काव्य की पृष्ठभूमि में अंचल के काव्य का विशेष अनुशीलन', पृ. 20
3. सुरेश अग्रवाल –अंचल कृत क्षितिज बिम्ब समीक्षा 'आषाढ़ की वह आततायी रात' अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली, पृ.23
4. वही.....'मेरी पहली भौजाई' पृ. 33

5. वही..... 'मेरी पहली भौजाई' पृ. 35
6. वही.... 'लग्नभ्रष्टा' पृ. 44
7. वही..... बड़कुँवरिया, पृ. 67
8. वही.....'बंजर परती' पृ. 58
9. वही..... 'लंगड़ी कामना' पृ. 94
10. वही.....'अनव्याही सती' पृ.79
11. वही..... 'लंगड़ी कामना' पृ. 99
12. वही..... 'लंगड़ी कामना' पृ. 97
13. वही..... 'भाग्य का मूल और ब्याज' पृ.118
14. वही..... 'निर्जला रूलाई' पृ. 107

❖❖❖❖❖